



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2019; 5(6): 188-191

© 2019 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 25-09-2019

Accepted: 29-10-2019

डॉ.कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री
सहायक-आचार्य, परंपरागत
संस्कृत विभाग, फेकल्टी ओफ
आर्ट्स, महाराजा सयाजीराव
विश्वविद्यालय: वड़ोदरा, गुजरात,
भारत

वैदिकसाहित्य में मनुष्यजीवन

डॉ.कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री

सारांश

जीवन जीने का नाम है और जीना एक कला है। ऐसे तो जीवन शब्द का प्रयोग भाषा में सब के साथ कर दिया जाता है जैसे प्राणी का जीवन, वृक्ष का जीवन, नदी का जीवन, समुद्र का जीवन, पाषण का जीवन, परन्तु वस्तुतः जीवन शब्द की सार्थकता मनुष्य के साथ ही है, इतर प्राणियों या जड़ पदार्थों का जीवन एक बनी बनाई पद्धति पर चलते रहना है, परन्तु मनुष्य अपनी जीने की पद्धति निर्माण स्वयं करता है। वह पद्धति क्या हो, इसी में जीवन की व्याख्या निहित है।

कूटशब्द: प्राणी का जीवन, वृक्ष का जीवन, नदी का जीवन, समुद्र का जीवन, पाषण का जीवन

प्रस्तावना

मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है

छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है।^(१) यज्ञ के तिन सवन होते हैं— प्रातः-सवन, माध्यन्दिन-सवन, और सायं-सवन। मनुष्य जीवन के प्रथम चौबीस वर्ष प्रातः-सवन है, क्योंकि प्रातः-सवन का सम्बन्ध गायत्री छन्द से होता है, गायत्री छन्द में चौबीस अक्षर होते हैं। जो मनुष्य अपने इन प्रातः-सवन रूप चौबीस वर्षों को यज्ञ भावना से व्यतीत करने का प्रयत्न करता है, वासु नामक प्राण उसके अधीन हो जाते हैं। जीवन के अगले चौवालीस वर्ष माध्यन्दिन-सवन होते हैं, इस माध्यन्दिन-सवन का सम्बन्ध त्रिष्टुप छन्द से है, त्रिष्टुप छन्द में चौवालीस अक्षर होते हैं। जो मनुष्य अपने इन माध्यन्दिन-सवन रूप चौवालीस वर्षों को यज्ञ भावना से व्यतीत करता है, रूद्र नामक प्राण उसके अधीन हो जाते हैं। जीवन के अगले अड़तालीस वर्ष सायं-सवन होते हैं। इस सायं-सवन का सम्बन्ध जगती छन्द से है, जगती छन्द में अड़तालीस अक्षर होते हैं, जो मनुष्य अपने इन सायं-सवन रूप अड़तालीस वर्षों को यज्ञ भावना से व्यतीत करता है, आदित्य नामक प्राण उसके अधीन हो जाते हैं। सचमुच वैदिकसंस्कृति में मनुष्य का सारा जीवन ही यज्ञमय है। उसके जीवन का आरम्भ जातकर्म संस्कार से लेकर अन्त्येष्टी संस्कार तक समाप्ति होती है। मध्य में नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन गोदान चूडाकर्म कर्णविध उपनयन समावर्तन विवाह आदि संस्कार होते हैं। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञरूप पञ्चयज्ञ का अनुष्ठान उसे प्रतिदिन ही करना होता है। स्मार्त तथा श्रौतयज्ञों से उस का जीवन ग्रथित रहता है। यज्ञका प्रतिक अग्नि सदा उसके साथ रहता है। 'यज्' धातु से देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थों के अनुसार स्वार्थ त्याग पूर्वक परोपकार की भावना से लोकहितार्थ किये जानेवाले महानकार्य भी यज्ञ कहलाते हैं।

Corresponding Author:

डॉ.कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री
सहायक-आचार्य, परंपरागत
संस्कृत विभाग, फेकल्टी ओफ
आर्ट्स, महाराजा सयाजीराव
विश्वविद्यालय: वड़ोदरा, गुजरात,
भारत

इनके अतिरिक्त मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ अध्यात्म साधना है। मनुष्य स्वयं यज्ञ है, उसका आत्मा यजमान है, मन उसका ब्रह्मा है, प्राण उद्गाता है, वाक् उसका होता है, चक्षु अध्वर्यु है, जैसे गोपथब्राह्मण कहता है –

पुरुषो वै यज्ञस्तस्य मन एव ब्रह्मा, प्राण उद्गाता, अपानः प्रस्तोता, व्यानः प्रतिहर्ता, वाग् होता, चक्षुरध्वर्युः, प्रजापतिः सदस्यः, अंगानि होत्राशंसिनः, आत्मा यजमानः ॥^(२)

शरीर के अन्दर अवस्थित अन्य शक्तियां इतर ऋत्विजों का कार्य कर रही है। परमात्मा ही इस यज्ञ का अग्नि है, उसमें आत्मसमर्पण की हवि दी जाती है, इस अध्यात्म यज्ञ को करते हुए मनुष्य के आत्माको ऊर्ध्वरोहण के साथ शाश्वत उत्कर्ष प्राप्त करना है।

प्रगति मनुष्य जीवन की धारा है

इस मनुष्य शरीर बहुत कठिनाई से प्राप्त होता है। इसका एक-एक क्षण बहुत मूल्यवान है। जीवन के इस मूल्यवान क्षणों को यदि हमने आलस्य, प्रमाद और तन्द्रा में व्यतीत कर दिया तो हमसे अधिक अभाग्य और कौन होगा। हमें तो त्वरितगति से प्रगति करनी है। इसलिए वेद मनुष्य को उद्बोधन दे रहा है –

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आहि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥
(३)

हे पुरुष ! ध्यान रख, तेरी उन्नति हो, अवति नहीं। तुझे मैं जीवन और बल दे रहा हूँ। तू इस अमृतमय, सुखगामी शरीररथ पर आरूढ़ हो और दीर्घजीवी होता हुआ ज्ञान की चर्चा कर।

अश्मनवती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीतये असन दूरेवा अनमीवानुत्तरेमाभी वाजान् ॥
(४)

राग, द्वेष, मोह आदि के पत्थरोंवाली सांसारिक नदी वेग से वह रही है। हे मित्रो, उठो मिलकर उद्यम करो और इसे पार कर लो। जो तुम्हारे पास खोटी चलो का बोझ है उसे तुम यहीं छोड़ दो। आओ आधि व्याधि रहित ऐश्वर्यों को पाने के लिए हम तुम उस पर पहुंचे।

दिवं च रोह पृथिवीं रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ॥^(५)

हे मनुष्य ! तूम अध्यात्मिक उन्नति करो, भौतिक उन्नति करो, आर्थिक उन्नति करो।

शुक्रोसी भ्राजोसी स्वरसी ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयां समाति समं क्राम ॥^(६)

हे मनुष्य ! तू शुद्ध है, तेजस्वी है, आनंदमय है, ज्योतिष्मान है। श्रेष्ठ तक पहुंच, समकक्ष से आगे बढ़।

जागरूकता मनुष्य जीवन की धन है

वैदिकसंस्कृति का जीवन सतत जागरूक जीवन है। उसमें प्रमाद का कोई स्थान नहीं है। तन्द्रा में पड़े रहना और तामसिकता में आनंद लेना मानव की गरिमा के अनुरूप नहीं है।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं ण स्वप्राय स्पृहयन्ति।
यान्ति प्रमादमतन्द्राः ॥^(७)

जो मनुष्य जागकर यज्ञकर्मों में तत्पर होता है उसी को देवता कहते हैं। वे सोनेवाले से प्रीटी नहीं करते। देवता स्वयं आलस्य रहित हैं, अतः वे आलासी प्रमादी को दण्डित करते हैं।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।

यो जागार तमयं सोम आह तवाहस्मी सख्ये न्योकाः ॥
(८)

जो जगाता है उसी से ऋचायें प्यार करती है, जो जागता है उसी से साम प्यार करती है, जो जागता है उसीका सोम प्रभु सखा बनता है।

दीक्षा मनुष्य जीवन का संबल है

वैदिक जीवन में व्रत ग्रहण का बहुत महत्त्व है। जब मनुष्य किसी सत्कार्य का व्रत ले लेता है तब उसके अन्दर उस कार्य का सफलतापूर्वक निर्वाह करने की अपौरवा क्षमता आ जाती है। व्रत लोप का भय से उस शुभ कार्य से विचलित नहीं होने देता। श्रुति कहती है –

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥^(९)

व्रत ग्रहण करने से मनुष्य दीक्षा को प्राप्त करता है। दीक्षा ले लेने पर कार्यपूर्ति या फलप्राप्तिरूप दक्षिणा मिलती है। दक्षिणा या फलप्राप्ति से उस कार्य के प्रति अन्यो की भी श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है। अग्नि समिन्धन की दीक्षा लेता हुआ वैदिक स्तोता उद्गार प्रकट करता है –

अभ्यादधामि समिशामग्ने व्रतपते त्वयि।

व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥^(१०)

हे व्रतपति अग्नि ! मैं तुझमें समिधा का आधान करता हूँ । मैं व्रत और श्रद्धा को प्राप्त करके दीक्षित होकर तुझे प्रज्वलित करता हूँ ।

यह केवल अग्नि होत्र की अग्नि का ही प्रदीपन नहीं है, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्नि प्रदीपन तथा मिधादान होता है । अग्नि-प्रदीपन महारम्भ का उपक्रम है, किसी भी महान् कार्य को आरम्भ करना अग्नि-प्रदीपन है और उसे बढ़ाने के लिये तन, मन, या धन अर्पण करना समिधादान तथा आहितप्रदान है ।

सत्य मनुष्य जीवन का पाथेय है

वैदिकसंस्कृति का जीवन सत्य से ओतप्रोत है । सत्य के नींव पर ही वैदिक जीवन का भवन खड़ा है। सत्य में मन, वचन और कर्म तीनों का सत्य में समाविष्ट है, क्योंकि मनुष्य जैसा मन से विचार करता है, वैसे ही वाणी से बोलता है और जैसा वाणी से बोलता है वैसे ही कर्म करता है । यह भूमि सत्य पर ही अवलंबित है – सत्येनोत्तमिता भूमिः । अथर्व -१४.१.१ अत एव वैदिक साधक सत्य का व्रत धारण करता है –

अग्नेव्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहममृतात् सत्यमुपैति ॥^(११)

हे व्रतपति अग्ने ! मैं व्रत करूंगा, उसे मैं पूर्ण कर सकूँ । वह सफल हो । मेरा व्रत यह है कि मैं असत्य को त्यागकर सत्य को प्राप्त होता हूँ । सत्याचरण की महिमा वेद में इसप्रकार गान की गई है –

ऋतस्य ही शुरुधः सन्ति पूर्वी ऋतस्य धितिर्वृजिनानी
हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान
आयोः ॥^(१२)

सत्य की शोक निवारक शक्तियाँ श्रेष्ठ हैं । सत्य का धारण पाप - तापों को नष्ट करता है । सत्य का बोधक, देदीप्यमान, पवित्र कीर्तिगान बहरे कानों को भी खोल देता है ।

अत एव ऋषिकी अनुभूति है कि सत्य की है विजय होती है असत्य की नहीं –

सत्यमेव जयते नानृतम् ।^(१३) सत्य ही सच्चा तप है - ऋतं तपः सत्यं तपः ।^(१४)

सत्य पूर्वक ही जीवन में सोम का सावन किया जाता है –

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रियेन्द्रो
परिस्रव ॥^(१५)

सत्य से ही आत्मा के दर्शन होते हैं –

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ।^(१६)

आध्यात्मिकता मनुष्यजीवन की प्यास है

वैदिकमानव आध्यात्मिकता का प्यासु है । जिसने वेदों को पढ़कर भी अक्षरब्रह्म का साक्षात्कार नहीं किया, उसका वेदाध्ययन विशेष अर्थ नहीं रखता-‘यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति’ ऋ.सं.१.१६४.३९, वैदिकस्तोत्रा वरुण देवता के साथ एक नाव में चढ़कर समुद्र की लहरों से झुलाना चाहता है-

आयद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम्
।
अधि यदपां सुभिश्चराव प्र प्रेम्ब ईम्बयावहै शुभे कम् ॥
^(१७)

जब मैं और वरुण प्रभु एक नाव पर बैठते हैं, उस नाव को आनन्द सागर में ले जाते हैं और उसकी तरंगों पर चढ़ाव उतार करते हैं तब झुला झुलनेकी तृप्ति अनुभव होती है ।

निष्पापता मनुष्य जीवन की गरीमा है

वैदिक जीवन में पाप के लिये कोई स्थान नहीं है । पापों से मुक्त रहने के लिये वेदों में शतशः प्रार्थना मिलती है । अथर्ववेद में पापों को ललकारता हुआ वैदिकसाधक कह रहा है – रे मन के पाप दूर हो जा क्योंकि तू मुझे अप्रशस्त परामर्श दे रहा है, मुझे तेरी कामना नहीं है तू चला जा, तू वृक्षों पर और वनों में भटकता फिर, मेरा मन तो गृहकार्यों में और गौओं में लगा हुआ है –

परो पेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि नत्वाकामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे
मनः ॥^(१८)

माधुर्य मनुष्य जीवन का प्रसाद है

वैदिकसंस्कृति में मानव का जीवन मधुमय और सौहार्दमय है । मधु की प्रार्थना करता हुआ वह कहता है कि मुझे सत्यसाधक केलिये वायु मधुमय हो, मेघ तथा सिन्धु मुझ पर मधुवर्षाएं ओषधीयां मेरे लिये मधुमती हो रात्रियां हमारे लिये मधुमय हो, उषा मधुमय हो, पार्थिवलोक मधुमय हो, पितृतुल्य द्युलोक तथा सूर्य मधुमय हो ।

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।^(१९)

अथर्ववेदमें भी साममनस्य सूक्तमें स्तोता सौहार्द की भावना की प्रार्थना करता हुआ कहता कि अपनों से मेरा सौहार्द हो, अपरिचितों से सौहार्द हो, हे अश्विनीदेवो ! तुम मेरे जीवन में सौहार्द की भावना को केन्द्रित कर दो । जैसे-

सहृदयं सामनस्य मविद्वेषं कृणोमिवः ।^(२०)
तेजस्विता और कीर्ति मनुष्य जीवन की शोभा है -

तेजस्वी और यशस्वी जीवन ही वैदिकजीवन है । वैदि मानव तेज और यश के प्रतिक अग्नि और सूर्य का आदर्श सदा अपने सम्मुख रखता है, जैसे कह है -

अग्ने वर्चस्विन् वर्चस्वांस्त्वं देवेष्वसि वरचस्वानहं
मनुष्येषु भूयासम् ।^(२१)

अन्यत्र अथर्ववेदका षष्ठकाण्ड में स्तोता कहत है कि जो दीप्ति सिंह में है, व्याघ्र में है, सर्प में, अग्नि में, ब्राह्मण में, सूर्य में और जिस दिव्य सुभगा दीप्ति ने इन्द्र को इन्द्रत्व प्रदान किया है वह दीप्ति ब्रह्मवर्चस से संयुक्त होकर हमें प्राप्ति हो ।

शान्ति मनुष्य जीवन का रस है

वैदिकजीवन शान्ति का परमधाम है । ईर्ष्या, द्वेष, कलह और अशान्ति का वातावरण वेद को प्रिय नहीं है । वैदिक स्तोता प्रकृति की एक-एक वस्तु से शान्ति की पुकार करता है, विस्तीर्ण प्रकाश का दाता सूर्य हमें शान्ति देता हुआ उदित हो, चारों दिशाएं हमारे लिये शान्तिदयक हों, अविचल पर्वत शान्ति दें, सिन्धु और नदियां हमें शान्ति दें, सविता देव हमारे लिये शान्तिकर हों, चमकिली उषाएं शान्तिकारिणी हों, पर्जन्य शान्तिदायक हो । हम जो कार्यों की पूर्ण योजनाएं बनाते हैं वे शान्ति का अनुसरण करनेवाली हो, हमारे कृत और अकृत कार्य शान्ति का अनुसरण करनेवाली हों । हमारा भूत, वर्तमान, भविष्यत सबकुछ शान्त हो-

शान्तानि पूर्व रूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव समस्तु नः ॥^(२२)

इसप्रकार वैदिकसंस्कृति का मनुष्यजीवन यज्ञमय, प्रगतिशील, जागरुकता, व्रतदक्षीत, सत्यमय, आध्यात्मिक, निष्पाप, माधुर, सौहार्दमय, तेजस्वी, यशस्वी और शान्ति का अनुगामी है । जिनकी प्रेरणा वेद हमें निरन्तर दे रहे हैं ।

संदर्भग्रन्थसूची

1. छान्दोग्य-
उपनिषद्,(१९९०)शङ्करभाष्यम्,गीताप्रेस,गोरखपुर,उ.प्र.
2. गोपथब्राह्मणम्-५.४,(१९९३)प्रज्ञादेवी,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान्,दिल्ली
3. अथर्ववेदसंहिता-८.१.६,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
4. अथर्ववेदसंहिता-१२.२.२६,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
5. अथर्ववेदसंहिता-१३.१.३४,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
6. अथर्ववेदसंहिता-२.११.५,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
7. ऋग्वेदसंहिता-८.२.१८,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
8. ऋग्वेदसंहिता-५.४४.१४,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
9. शु.यजुर्वेदसंहिता-१९.३०,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
10. शु.यजुर्वेदसंहिता-२०.२४,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
11. शु.यजुर्वेदसंहिता-१.५,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
12. ऋग्वेदसंहिता-४.२३.८,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
13. मुंडकोपनिषद्-
३.१.६,(१९९०)शङ्करभाष्यम्,गीताप्रेस,गोरखपुर,उ.प्र.
14. तैत्तरीय-आरण्यक-१०.८.,(१९८५)चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान्,दिल्ली
15. ऋग्वेदसंहिता-९.११३.२,(१९९४) नाग प्रकाशक, नईदिल्ली
16. मुंडकोपनिषद्-
३.१.५,(१९९०)शङ्करभाष्यम्,गीताप्रेस,गोरखपुर,उ.प्र.
17. ऋग्वेदसंहिता-७.८८.३,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली
18. अथर्ववेद-६.४५.१.,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली
19. ऋग्वेद-१.९०.६.७.,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली
20. अथर्ववेद-३.३०.१.,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली
21. अथर्ववेद-७.५२.१.,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली
22. अथर्ववेद-१९.९.२.,(२००४) वेदज्योति प्रेस,दिल्ली